

[2009] 9 एस. सी. आर. 367

बसंती प्रसाद

बनाम

अध्यक्ष, बिहार विद्यालय परीक्षा समिति

और अन्य

(2009 की दीवानी अपील सं. 3564)

14 मई 2009

[तरुण चैटर्जी और एच.एल. दत्त, न्यायमूर्तिगण]

सेवा कानून - सेवानिवृत्ति लाभ - दावा - दंड संहिता के प्रावधानों के तहत कर्मचारी के खिलाफ दोषसिद्धि आदेश - अपील लंबित रहने के दौरान सेवा समाप्ति - इसके बाद, कर्मचारी की मृत्यु - बाद में बरी होने का आदेश पारित किया गया - कर्मचारी की पत्नी द्वारा सेवानिवृत्ति लाभों की मांग करते हुए प्रतिनिधित्व, अस्वीकृति - मौद्रिक और सेवा लाभों की मांग करते हुए विनिर्दिष्ट आदेश याचिका और बर्खास्तगी आदेश को अभिखंडित करने की मांग करते हुए अंतरिम आवेदन - बर्खास्तगी - एलपीए भी खारिज - अपील पर, अभिनिर्धारित: उच्च न्यायालय का आदेश उचित नहीं - कर्मचारी को दोषसिद्धि आदेश के आधार पर बर्खास्त किया गया था - दोषी कर्मचारी के खिलाफ कोई विभागीय जांच नहीं की गई थी - याचिकाकर्ता की ओर से कोई लापरवाही या गलती या सहमति नहीं थी - कर्मचारी बरी होने तक बर्खास्तगी पर सवाल नहीं उठा सकता था - दोषसिद्धि आदेश को उच्च मंच द्वारा अपास्त कर दिया गया है और यह अंतिम हो गया है - रिट न्यायालय को याचिकाकर्ता की शिकायत का निवारण करने के लिए नियोक्ता को निर्देश देकर अपने असाधारण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करना चाहिए था - इसलिए, वाद को वापस भेजा जाना चाहिए - हालांकि, मुकदमा पिछले एक दशक से लंबित है और याचिकाकर्ता एक गरीब विधवा है -

बर्खास्तगी आदेश को बिना बकाया वेतन के अपास्त किया गया है - याचिकाकर्ता केवल पेंशन का हकदार है।

जी.एम. टैंक बनाम गुजरात राज्य (2006) 5 एससीसी 446, पर अवलंबन किया गया।

मून मिल्स लिमिटेड बनाम एम.आर. मेहर, अध्यक्ष, औद्योगिक न्यायालय एआईआर 1967 एससी 1450; महाराष्ट्र राज्य सड़क परिवहन निगम बनाम बलवंत रेगुलर मोटर सर्विस (1969) 1 एससीआर 808; मध्य प्रदेश राज्य बनाम नंदलाल जायसवाल (1986) 4 एससीसी 566 और श्री वल्लभ ग्लास वर्क्स लिमिटेड बनाम भारत संघ (1984) 3 एससीसी 362, का संदर्भित किया गया।

लिंडसे पेट्रोलियम कंपनी बनाम प्रॉस्पर आर्मस्ट्रांग हर्ड अब्राम फेयरवॉल और जॉन केम्प (1874) 5 पीसी 221 का संदर्भित किया गया है।

नजीर संदर्भ:

एआईआर 1967 एससी 1450	संदर्भित किया गया	कंडिका 15
(1969) 1 एससीआर 808	संदर्भित किया गया।	कंडिका 15
(1874) 5 पीसी 221	संदर्भित किया गया।	कंडिका 15
(1986) 4 एस. सी. सी. 566	संदर्भित किया गया।	कंडिका 16
(1984) 3 एस. सी. सी. 362	संदर्भित किया गया।	कंडिका 17
(2006) 5 एस. सी. सी. 446	अवलंबन किया गया।	कंडिका 22

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार: 2009 की दीवानी अपील संख्या 3564।

पटना उच्च न्यायालय के दिनांक 12.07.2007 के एल.पी.ए. संख्या 521/2007 के निर्णय एवं आदेश से।

अपीलकर्ताओं की ओर से रंजन मुखर्जी।

उत्तरदाताओं की ओर से गोपाल सिंह, मनीष कुमार और रोहन कामा।

न्यायालय का आदेश इस प्रकार दिया गया:

आदेश

1. अनुमति प्रदान की गई।
2. यह संविधान के अनुच्छेद 136 के अंतर्गत पटना उच्च न्यायालय के दिनांक 12.7.2007 के एल.पी.ए. संख्या 521/2007 के निर्णय एवं आदेश से अपील करने की विशेष अनुमति हेतु एक याचिका है। आक्षेपित निर्णय द्वारा, उच्च न्यायालय ने अपील को खारिज कर दिया है।
3. प्रासंगिक तथ्य यह हैं कि अपीलकर्ता मृतक भृगु आश्रम प्रसाद की पत्नी हैं। जब वे जीवित थे, तब वे बिहार विद्यालय परीक्षा समिति में सहायक के पद पर कार्यरत थे।
4. वर्ष 1976 में, अपीलकर्ता के पति और समिति के अन्य कर्मचारियों के विरुद्ध माध्यमिक विद्यालय की वार्षिक परीक्षा में शामिल हुए कई परीक्षार्थियों के अंकपत्रों में छेड़छाड़ करने के आरोप में दांडिक कार्यवाही शुरू होने के कारण अपीलकर्ता के पति को निलंबित रखा गया था।
5. समिति द्वारा दायर शिकायत पर, क्षेत्राधिकार वाले पुलिस अधिकारियों ने न्यायिक दंडाधिकारी, पटना के समक्ष अपीलकर्ता के पति और समिति के अन्य कर्मचारियों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 420, 467, 471, 458 और 120-ख के अंतर्गत आरोप पत्र दायर किया था। मुकदमे की सुनवाई के बाद, न्यायिक दंडाधिकारी ने अपीलकर्ता के पति और समिति के अन्य कर्मचारियों को आरोप पत्र में लगाए गए अपराधों के लिए दोषी ठहराया और उन्हें 7.2.1989 के अपने आदेश द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 467, 468, 471 और 120-ख के तहत प्रत्येक अपराध के लिए दो साल के कठोर कारावास की सजा सुनाई।
6. अपीलकर्ता के पति और अन्य आरोपित कर्मचारियों ने न्यायिक दंडाधिकारी, पटना द्वारा पारित आदेश से व्यथित होकर अपर सत्र न्यायाधीश, पटना के समक्ष दांडिक अपील दायर की थी।

7. जब अपीलें विचार के लिए लंबित थीं, बिहार विद्यालय परीक्षा समिति, पटना ने अपने 4 अगस्त, 1992 के आदेश द्वारा अपीलकर्ता के पति की सेवाएं समाप्त कर दीं, क्योंकि उन्हें विद्वान मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, पटना द्वारा कोतवाली थाना, पटना के अपराध वाद संख्या 18/7/टीआर संख्या 121/1998, में भा.दं.सं की धारा 144 के तहत अपराधों के लिए दोषी ठहराया गया था।

8. सत्र न्यायालय, पटना में अपील के लंबित रहने के दौरान अपीलकर्ता के पति की मृत्यु हो गई। न्यायालय की अनुमति से, अपीलकर्ता ने दांडिक अपील पर मुकदमा चलाना जारी रखा था। विद्वान सत्र न्यायाधीश, पटना ने अपीलों को स्वीकार कर लिया और इस प्रकार अपीलकर्ता के पति और अन्य को बरी कर दिया।

9. दांडिक अपील के निस्तारण के बाद, अपीलकर्ता ने बिहार विद्यालय परीक्षा समिति के समक्ष अभ्यावेदन दाखिल किए, जिसमें अन्य बातों के साथ साथ यह निवेदन किया गया कि चूंकि उनके पति को न्यायिक दंडाधिकारी द्वारा पारित दोषसिद्धि आदेश के विरुद्ध दायर दांडिक अपील में सत्र न्यायालय द्वारा सम्मानपूर्वक बरी कर दिया गया है, इसलिए अपीलकर्ता के पति को सेवा से सेवानिवृत्ति की तिथि तक सेवा में माना जाना चाहिए और इसलिए, वह अपने दिवंगत पति के सभी सेवानिवृत्ति लाभों की हकदार हैं। बोर्ड (समिति) द्वारा उनकी अभ्यावेदनों को अस्वीकार किए जाने के कारण, अपीलकर्ता को पटना उच्च न्यायालय में सी.डब्ल्यू.जे.सी. संख्या 14536/2005 में विनिर्दिष्ट आदेश याचिका दायर करने के लिए विवश होना पड़ा, जिसमें अन्य बातों के साथ साथ बिहार विद्यालय परीक्षा समिति को उनके दिवंगत पति को देय सभी मौद्रिक और सेवा लाभों का भुगतान करने के लिए परमादेश रिट जारी करने की मांग की गई थी। विनिर्दिष्ट आदेश याचिका के लंबित रहने के दौरान, अपीलकर्ता ने अंतर्वर्ती आवेदन संख्या 1256/2007 दायर की, जिसमें अन्य बातों के साथ साथ न्यायालय से बोर्ड (समिति) द्वारा 4 अगस्त, 1992 को पारित उस आदेश को अभिखंडित करने के लिए उत्प्रेषण रिट जारी करने का अनुरोध किया गया था, जिसमें

अपीलकर्ता की सेवा को इस आधार पर समाप्त कर दिया गया था कि उन्हें एक दांडिक वाद में दोषी ठहराया गया था।

10. न्यायालय ने विनिर्दिष्ट आदेश याचिका को मुख्य रूप से इस आधार पर खारिज कर दिया कि, चूंकि अपीलकर्ता के पति ने जीवित रहते हुए दिनांक 4.8.1992 के सेवा समाप्ति आदेश पर सवाल नहीं उठाया था और इस विलम्बित चरण में अपीलकर्ता को बोर्ड (समिति) द्वारा पारित सेवा समाप्ति आदेश पर सवाल उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती। विद्वान न्यायाधीश के अनुसार, 26.2.2007 को आवेदन दायर करके उक्त आदेश पर सवाल उठाने में अपीलकर्ता की ओर से हुई विलंब एवं शिथिलता घातक है और इसे माफ नहीं किया जा सकता। आदेश में यह भी कहा गया है कि, चूंकि अपीलकर्ता के पति को एक दांडिक न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि के आदेश के मद्देनजर सेवा से बर्खास्त कर दिया गया था और चूंकि उस आदेश को किसी भी उच्चतर मंच द्वारा न तो संशोधित किया गया है और न ही रद्द किया गया है, इसलिए अपीलकर्ता विनिर्दिष्ट आदेश याचिका में मांगी गई अनुतोष का हकदार नहीं है। अपीलकर्ता द्वारा दायर लेटर पेटेंट अपील उच्च न्यायालय द्वारा इस आधार पर निरस्त कर दी गई कि अपीलकर्ता के पति ने, अपने जीवनकाल में, बोर्ड (समिति) द्वारा पारित सेवा समाप्ति आदेश को चुनौती नहीं दी थी, अतः अपीलकर्ता किसी भी प्रकार के अनुतोष की अधिकारी नहीं है, क्योंकि उनके अनुसार यह स्वीकृति के समान स्थिति प्रतीत होती है। न्यायालय ने यह भी पाया है कि अपीलकर्ता के पति को, उनके जीवित रहते हुए, समिति द्वारा पारित बर्खास्तगी के आदेश को सक्षम मंच के समक्ष चुनौती देने से कोई नहीं रोक सका। अपीलकर्ता इस अपील में हमारे समक्ष उपस्थित हैं, क्योंकि वह उपरोक्त निष्कर्ष और एल.पी.ए. संख्या 521/2007, दिनांक 12.7.2007 में न्यायालय द्वारा दिए गए निष्कर्ष से व्यथित है।

11. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि मृतक कर्मचारी ने सेवा में रहते हुए बोर्ड (समिति) द्वारा पारित बर्खास्तगी आदेश को चुनौती नहीं दी, क्योंकि बर्खास्तगी

आदेश भारतीय दंड संहिता के प्रावधानों के तहत दंडनीय अपराधों के लिए माननीय दंडाधिकारी द्वारा उनकी दोषसिद्धि का प्रत्यक्ष परिणाम था। यह मानते हुए भी कि यदि उन्होंने किसी उच्च मंच में भी इसे चुनौती दी होती, तो भी कोई बेहतर परिणाम नहीं निकलता, क्योंकि बिहार सेवा संहिता नियोक्ता को किसी सरकारी कर्मचारी की सेवा समाप्त करने का अधिकार देती है, यदि उसे किसी सक्षम दांडिक न्यायालय द्वारा भारतीय दंड संहिता के तहत दंडनीय अपराधों के लिए दोषी ठहराया जाता है। और चूंकि अपील का परिणाम स्पष्ट था, इसलिए अपीलकर्ता के पति ने समिति द्वारा उनकी सेवा समाप्त करने के आदेश को चुनौती नहीं दी थी। इसके अलावा, विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि यदि उन्होंने संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत विनिर्दिष्ट आदेश याचिका भी दायर की होती, तो भी वे सफल नहीं होते, क्योंकि बिहार सेवा संहिता नियोक्ता को नियोक्ता और कर्मचारी के संबंध को समाप्त करने का अधिकार देती है, यदि किसी भी कारण से, किसी कर्मचारी को भारतीय दंड संहिता के तहत अपराधों के लिए दोषी ठहराया जाता है। यह भी दलील दिया गया है कि दोषी कर्मचारी उच्च न्यायालय के समक्ष याचिका को जीवित नहीं रख सकता था, क्योंकि न्यायिक दंडाधिकारी द्वारा पारित दोषसिद्धि के आदेश के विरुद्ध उसकी दांडिक अपील सत्र न्यायालय में लंबित है। अतः, विद्वान अधिवक्ता ने यह बताया है कि उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ता द्वारा मांगी गई अनुतोष को केवल इस आधार पर अस्वीकार करने में त्रुटि की है कि वर्ष 2005 में दायर याचिका में अपीलकर्ता वर्ष 1992 में बोर्ड (समिति) द्वारा उसके पति के विरुद्ध पारित बर्खास्तगी आदेश को चुनौती नहीं दे सकती थी। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे यह तर्क दिया है कि सत्र न्यायालय में विद्वान दंडाधिकारी द्वारा पारित दोषसिद्धि आदेश के विरुद्ध दायर दांडिक अपील के लंबित रहने के दौरान, अपीलकर्ता के पति किसी अन्य मंच से कोई अनुतोष नहीं मांग सकते थे, क्योंकि बर्खास्तगी आदेश अपीलकर्ता पर लंबित था और अपीलकर्ता के लिए कार्रवाई का कारण दांडिक अपील के निपटारे के बाद

ही उत्पन्न हुआ, जिसमें सत्र न्यायालय ने अपीलकर्ता के पति और समिति के अन्य कर्मचारियों को बरी कर दिया था।

12. उत्तरदाता के विद्वान अधिवक्ता ने अपनी दलीलों के दौरान यह तर्क दिया कि चूंकि मृतक कर्मचारी ने अपने जीवनकाल में बर्खास्तगी के आदेश को चुनौती नहीं दी थी, इसलिए उच्च न्यायालय द्वारा सहमति, विबंधन और विलंब के आधार पर अपील को खारिज करना उचित था। आगे यह भी तर्क दिया गया कि चूंकि अपीलकर्ता के पति का निधन हो चुका है, इसलिए बोर्ड (समिति) कोई भी अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू नहीं कर सकती जिसमें अपीलकर्ता के पति के खिलाफ लगाए गए आरोपों को सिद्ध और स्थापित किया जा सके। उत्तरदाता के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी कहा कि उच्च न्यायालय द्वारा वर्ष 2007 में अतिरिक्त अनुतोष की मांग करते हुए विनिर्दिष्ट आदेश याचिका में की गई प्रार्थनाओं में संशोधन के लिए अपीलकर्ता द्वारा दायर आवेदन को खारिज करना उचित था। अंत में, यह दलील दिया जाता है कि मात्र इस कारण कि अपीलकर्ता के पति को सत्र न्यायालय द्वारा सभी दांडिक आरोपों से बरी कर दिया गया है, स्वतः ही अपीलकर्ता को विनिर्दिष्ट आदेश याचिका में दावा की गई सभी राहतें प्राप्त करने का अधिकार नहीं मिल जाता है, और किसी भी स्थिति में अपीलकर्ता सेवा समाप्ति की तिथि से लेकर सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने पर कर्मचारी के सेवानिवृत्त माने जाने तक के वेतन के बकाया की हकदार नहीं है। अपने तर्क के समर्थन में, विद्वान अधिवक्ता ने *जी.एम. टैंक बनाम गुजरात राज्य*, (2006) 5 एससीसी 446 के वाद में इस न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियों को हमारे ध्यान में लाया है।

13. उच्च न्यायालय के समक्ष विचारणीय मुख्य प्रश्न यह था कि क्या अपीलकर्ता को केवल इस आधार पर खारिज कर दिया जाना चाहिए कि उसने वर्ष 1992 में अपने दिवंगत पति के विरुद्ध पारित बर्खास्तगी आदेश को वर्ष 2005 में दायर याचिका में विलंबित रूप से चुनौती दी थी, और दूसरा प्रासंगिक मुद्दा यह था कि क्या अपीलकर्ता सत्र न्यायालय द्वारा पारित उस आदेश के मद्देनजर मौद्रिक और सेवा लाभों की हकदार है, जिसमें न्यायिक

दंडाधिकारी द्वारा पूर्ण सुनवाई के बाद अपीलकर्ता के पति को भारतीय दंड संहिता के तहत आरोपित अपराधों से बरी कर दिया गया था।

14. सामान्य परिस्थितियों में, हम उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश पर आपत्ति नहीं उठाते। उनका यह कहना उचित है कि दोषी कर्मचारी को पुराने दावे को फिर से उठाने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए और उच्च न्यायालय अपने विवेक का प्रयोग करते हुए आमतौर पर सुस्त और आलसी व्यक्ति की सहायता नहीं करता। यह पारंपरिक दृष्टिकोण है और इस न्यायालय के अनेक निर्णयों द्वारा समर्थित है। इस न्यायालय ने यह भी माना है कि ऐसा कोई अटल नियम नहीं है कि जब भी देरी हो, न्यायालय को याचिका पर विचार करने से इनकार करना ही होगा। इस न्यायालय ने कहा है कि संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत अपने असाधारण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए रिट न्यायालय याचिका दाखिल करने में हुई देरी को क्षमा कर सकता है, यदि देरी का संतोषजनक स्पष्टीकरण दिया गया हो।

15. इस स्तर पर *मून मिल्स लिमिटेड बनाम एम.आर. मेहर, अध्यक्ष, औद्योगिक न्यायालय*, एआईआर 1967 एससी 1450 और *महाराष्ट्र राज्य सड़क परिवहन निगम बनाम बलवंत रेगुलर मोटर सर्विस*, (1969) 1 एससीआर 808 के मामलों में इस न्यायालय के निर्णयों का संदर्भ दिया जा सकता है, जिनमें इस न्यायालय ने *लिंडसे पेट्रोलियम कंपनी बनाम प्रॉस्पर आर्मस्ट्रॉंग हर्ड अब्राम फेयरवाल और जॉन केम्प* (1874) 5 पीसी 221 के वाद में प्रिवी काउंसिल द्वारा व्यक्त किए गए दृष्टिकोण को अनुमोदित किया है। न्यायालय ने टिप्पणी की थी:-

“अब, समता के न्यायालयों में विलंब का सिद्धांत न तो मनमाना है और न ही तकनीकी सिद्धांत है। जहाँ किसी पक्ष द्वारा अपने आचरण से ऐसा कार्य किया गया हो जिसे उचित रूप से उस उपाय का त्याग माना जा सकता है, या जहाँ अपने आचरण और लापरवाही से उसने, यद्यपि शायद उस उपाय का त्याग नहीं किया हो, फिर भी दूसरे पक्ष को ऐसी स्थिति में डाल दिया हो जिसमें बाद में उपाय का दावा किए जाने

पर उसे रखना उचित न हो, ऐसे मामलों में समय का बीत जाना और विलंब अत्यंत महत्वपूर्ण होते हैं। लेकिन हर वाद में, यदि अनुतोष के विरुद्ध कोई तर्क, जो अन्यथा न्यायसंगत होता, केवल विलंब पर आधारित है, और यह विलंब किसी भी परिसीमा कानून द्वारा बाधा नहीं बनता है, तो उस बचाव की वैधता का परीक्षण मूल रूप से न्यायसंगत सिद्धांतों पर किया जाना चाहिए। ऐसे मामलों में दो परिस्थितियाँ हमेशा महत्वपूर्ण होती हैं जो हैं विलंब की अवधि और उस अंतराल के दौरान किए गए कार्यों की प्रकृति, जो किसी भी पक्ष को प्रभावित कर सकती हैं और उपाय के संबंध में किसी भी पक्ष को चुनने में न्याय या अन्याय का संतुलन बना सकती हैं।”

16. *मध्य प्रदेश राज्य बनाम नंदलाल जायसवाल* (1986) धारा 566 में यह कहा गया

था:-

“इस बात में कोई संदेह नहीं है कि याचिकाकर्ताओं ने विनिर्दिष्ट आदेश याचिकाएं दाखिल करने में घोर विलंब किया, जिसके परिणामस्वरूप याचिकाएं दाखिल होने तक काफी समय बीत चुका था। यदि याचिकाकर्ता द्वारा विनिर्दिष्ट आदेश याचिका दाखिल करने में अत्यधिक विलंब होता है और ऐसे विलंब का संतोषजनक स्पष्टीकरण नहीं दिया जाता है, तो उच्च न्यायालय अपने रिट क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए हस्तक्षेप करने और अनुतोष प्रदान करने से इनकार कर सकता है। विलंब या लापरवाही के इस नियम का विकास कई कारकों पर आधारित है। बेशक, विलंब या लापरवाही का यह नियम कोई कठोर नियम नहीं है जिसे एक निश्चित सूत्र में ढाला जा सके, क्योंकि ऐसे वाद हो सकते हैं जहां विलंब और तीसरे पक्ष के अधिकारों के सृजन के बावजूद उच्च न्यायालय अपने विवेक का प्रयोग करते हुए हस्तक्षेप कर याचिकाकर्ता को अनुतोष प्रदान कर सकता है। लेकिन, ऐसे वाद जहां न्याय की मांग इतनी प्रबल हो कि उच्च न्यायालय विलंब या तीसरे पक्ष के अधिकारों के सृजन के बावजूद हस्तक्षेप करने के लिए इच्छुक हो, वे स्वभावतः दुर्लभ होंगे। अंततः यह

न्यायालय के विवेकाधिकार का विषय होगा; स्वभावतः प्रत्येक विवेकाधिकार का प्रयोग निष्पक्ष एवं न्यायोचित ढंग से किया जाना चाहिए, ताकि न्याय को बढ़ावा मिले, न कि उसका पराभव हो।”

17. श्री वल्लभ ग्लासवर्क्स लिमिटेड बनाम भारत संघ (1984) 3 एससीसी 362 में यह टिप्पणी की गई थी:

“यद्यपि परिसीमा अधिनियम, 1963 द्वारा विभिन्न प्रकार के मुकदमों को दायर करने के लिए अलग-अलग परिसीमा अवधि निर्धारित की गई है, लेकिन संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत दायर याचिकाओं के संबंध में कानून द्वारा ऐसी कोई अवधि निर्धारित नहीं है। क्या संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत याचिकाकर्ता को अनुतोष दी जानी चाहिए, जबकि वाद का कारण बहुत पहले उत्पन्न हुआ हो, यह विलंब के सिद्धांत द्वारा शासित न्यायिक विवेक का मामला है। जहां कोई याचिकाकर्ता, जो मुकदमे के माध्यम से वैकल्पिक उपाय का लाभ उठा सकता था, संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय में जाता है, तो आमतौर पर मुकदमे दायर करने के लिए निर्धारित परिसीमा अवधि की समाप्ति के बाद विनिर्दिष्ट आदेश याचिका दायर करने में किसी भी अस्पष्ट विलंब को अनुचित माना जाना उचित है। हालांकि, यह नियम एक कठोर सूत्र नहीं हो सकता। ऐसे वाद हो सकते हैं जहां कम अवधि का विलंब भी संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत याचिका में अनुतोष देने से इनकार करने के लिए पर्याप्त माना जा सकता है। ऐसे वाद भी हो सकते हैं जहां ऐसी परिस्थितियां हों जो न्यायालय को अनुतोष देने के लिए प्रेरित कर सकती हैं, भले ही यह याचिका मुकदमे के लिए निर्धारित समय सीमा के बाद दायर की गई हो सकती है। प्रत्येक वाद का निर्णय उसके अपने तथ्यों एवं परिस्थितियों के आधार पर किया जाना चाहिए, जिसमें पक्षकारों के आचरण, परिस्थितियों में हुए परिवर्तन, तथा विपक्षी पक्ष या सामान्य जन को होने वाली संभावित हानि आदि का विचार किया जाता है।”

18. हम इस फैसले में इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों का हवाला देना आवश्यक नहीं समझते, जिनमें बार-बार यह स्पष्ट किया गया है कि यदि अत्यधिक और अस्पष्ट विलंब हुआ हो और इस बीच तृतीय पक्ष के अधिकार उत्पन्न हुए हो, तो उच्च न्यायालय हस्तक्षेप करने से इनकार कर देगा। हालांकि, यदि विलंब का उचित स्पष्टीकरण दिया गया हो और तृतीय पक्ष अधिकारों पर कोई प्रभाव न पड़ने वाला हो, तो उच्च न्यायालय याचिका पर विचार कर सकता है और पीड़ित व्यक्ति के वाद पर गुण-दोष के आधार पर निर्णय ले सकता है।

19. अब इस वाद के तथ्यों पर वापस आते हुए, अपीलकर्ता के पति की सेवाएँ केवल इस आधार पर समाप्त की गईं कि उन्हें न्यायिक दंडाधिकारी द्वारा भारतीय दंड संहिता के प्रावधानों के तहत कुछ अपराधों के लिए दोषी ठहराया गया था। यह ऐसा मामला नहीं है जहाँ दोषी कर्मचारी को इस आधार पर सेवा से बर्खास्त किया गया हो कि विभागीय जाँच के बाद पुलिस ने भारतीय दंड संहिता के तहत कुछ अपराधों के लिए उसके खिलाफ आरोप पत्र दायर किया था। बाद की परिस्थितियों में, दोषी कर्मचारी यह नहीं कह सकता था कि उसने उचित समय के भीतर आदेश पर सवाल नहीं उठाया, क्योंकि न्यायिक दंडाधिकारी द्वारा पारित दोषसिद्धि आदेश का अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश से कोई संबंध नहीं है। जैसा कि हमने पहले ही देखा है, बर्खास्तगी दंडाधिकारी द्वारा पारित दोषसिद्धि आदेश के मद्देनजर थी, जब तक कि उस आदेश को उच्चतर मंच द्वारा अपास्त नहीं कर दिया जाता, अपीलकर्ता के पति या अपीलकर्ता सत्र न्यायालय द्वारा बरी किए जाने तक उस पर सवाल नहीं उठा सकते थे। इन विशिष्ट परिस्थितियों को देखते हुए, हमारी राय में, उच्च न्यायालय द्वारा अपीलकर्ता की प्रार्थना को मुख्य रूप से इस आधार पर खारिज करना उचित नहीं था कि अपीलकर्ता ने 4.8.1992 को पारित बर्खास्तगी आदेश को वर्ष 2005 में दायर याचिका में चुनौती देने में देरी और लापरवाही बरती थी। वर्तमान वाद में, हमारी राय है कि अपीलकर्ता की ओर से ऐसी कोई लापरवाही, चूक या मौन स्वीकृति नहीं है जो उसे विनिर्दिष्ट आदेश

याचिका प्राप्त करने से अयोग्य ठहराए। ऐसा कहने के बाद, वाद को उच्च न्यायालय को वापस भेजा जाना चाहिए ताकि वाद की खूबियों पर निर्णय लिया जा सके। लेकिन पिछले एक दशक से पक्षों के बीच लंबित मुकदमों और सीमित संसाधनों के साथ विभिन्न मंचों पर मुकदमा लड़ रही गरीब विधवा की दुर्दशा को ध्यान में रखते हुए, हम वाद को वापस भेजने से परहेज करते हैं और इस मुकदमे को समाप्त करने के लिए यहीं पर वाद की खूबियों पर निर्णय लेने का इरादा रखते हैं।

20. अपीलकर्ता को क्या अनुतोष मिलनी चाहिए, यही मुख्य मुद्दा है जिस पर विचार किया जाना है।

21. तथ्य विवादित नहीं हैं। अपीलकर्ता के पति की सेवा केवल इस आधार पर समाप्त की गई थी कि उन्हें न्यायिक दंडाधिकारी द्वारा भारतीय दंड संहिता के तहत अपराधों के लिए दोषी ठहराया गया था। इसका सीधा अर्थ यह है कि दोषी कर्मचारी के खिलाफ कोई स्वतंत्र विभागीय जांच नहीं की गई थी। सत्र न्यायालय में दोषसिद्धि के आदेश के विरुद्ध दायर अपील में अपीलकर्ता सफल रही है। चूंकि, लगाया गया दंड दोषसिद्धि के आदेश पर आधारित था और चूंकि इसे एक उच्चतर मंच द्वारा पारित आदेश द्वारा अपास्त कर दिया गया है और वह आदेश विभिन्न कारणों से अंतिम हो गया है, जिसमें अपीलकर्ता के पति की मृत्यु भी शामिल है, इसलिए नियोक्ता द्वारा अपीलकर्ता की शिकायत का निवारण किया जाना आवश्यक है और चूंकि ऐसा नहीं किया गया, इसलिए एक रिट न्यायालय को अति तकनीकी दृष्टिकोण अपनाए बिना उत्तरदाताओं को अपीलकर्ता की शिकायत का निवारण करने का आदेश देकर अपने असाधारण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करना चाहिए था। उपरोक्त को देखते हुए, उत्तरदाताओं द्वारा अपीलकर्ता की सेवाओं को समाप्त करने का पारित आदेश अपास्त किया जाना आवश्यक है और हम ऐसा करते हैं।

22. उत्तरदाता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि यदि विलंब को क्षमा कर दिया जाए और अपीलकर्ता को अनुतोष प्रदान की जाए, तो उत्तरदाता को वेतन और अन्य मौद्रिक

लाभों के भारी बकाया का भुगतान करना पड़ेगा, और दूसरा, वेतन बकाया के भुगतान का निर्देश स्वतः नहीं होता है और यह कई कारकों पर निर्भर करता है। विद्वान अधिवक्ता ने जी.एम. टैनक बनाम गुजरात राज्य के वाद में इस न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणी की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है, जिसमें इस न्यायालय ने कहा है:-

“32. वर्तमान वाद में, अपीलकर्ता ने वर्ष 1953 में उत्तरदाता के साथ कार्यभार ग्रहण किया। उन्हें 8-2-1979 को सेवा से निलंबित कर दिया गया और उन्हें 700 रुपये प्रति माह यानी वेतन का 50% निर्वाह भत्ता प्राप्त हुआ। 15-10-1982 को बर्खास्तगी का आदेश पारित किया गया। अपीलकर्ता ने उत्तरदाता के साथ 26 वर्ष की सेवा की थी, अर्थात् 1953 से 1979 तक। अपीलकर्ता अब फरवरी 1986 में सेवानिवृत्त हो जाएंगे। उन्हीं आरोपों और साक्ष्यों के आधार पर, विभाग ने 21-10-1982 को बर्खास्तगी का आदेश पारित किया, जबकि दांडिक न्यायालय ने उन्हें 30-1-2002 को बरी कर दिया। हालांकि, चूंकि दांडिक न्यायालय ने अपीलकर्ता को 30-1-2002 को बरी कर दिया था और इस प्रकार बरी होने तक, बर्खास्तगी को त्रुटिपूर्ण मानने का कोई कारण या आधार नहीं था, इसलिए कोई अनुतोष नहीं दी जा सकती। आर्थिक रूप से पेंशन 30-1-2002 से ही दी जा सकती थी। लेकिन तब तक अपीलकर्ता सेवानिवृत्त हो चुके थे; इसलिए, हम बिना पिछले वेतन के बर्खास्तगी के आदेश को अपास्त करना उचित समझते हैं। अपीलकर्ता पेंशन के हकदार होंगे।”

23. उपर्युक्त निर्णय में वर्णित तथ्य इस वाद के तथ्यों और परिस्थितियों से काफी हद तक मिलते-जुलते हैं। इसलिए, हमारे विचार के लिए उठाए गए मुद्दे पर हमें अधिक विचार करने की आवश्यकता नहीं है। अतः, हमारा मत है कि अपीलकर्ता पिछले बकाया वेतन का हकदार नहीं है। अपीलकर्ता केवल पेंशन का हकदार होगा।

24. परिणामस्वरूप, हम इस अपील को स्वीकार करते हैं। हम माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा सीडब्ल्यूजेसी संख्या 14536/2005 दिनांक 02.05.2007 को पारित आदेश

को अपास्त करते हैं, जिसे एलपी.ए. संख्या 521/2007 दिनांक 12.07.2007 में पुष्टि की गई थी। हालांकि, लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं दिया जाएगा।

एन. जे.

अपील की अनुमति दी गई।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।